जून १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

सुखी - सुरक्षित कौन?

पालि वाङ्मय के विशाल फलकपर २६०० वर्ष पूर्व के भारत का एक मनोहारी चित्र उभरकर आता है। उन दिनों कृषि के साथ-साथ गोपालन लोगों का एक प्रमुख पेशा था। बड़े-बड़े गोप सैकड़ों,हजारों की संख्या में गौवें पालते थे और सुख-समृद्धि का जीवन जीते थे।

ऐस ही एक समृद्ध और सुखी गृहस्थ के जीवन का चित्र उभरकर आया है। उसका नाम है धनिय गोप। उसकी प्रेमिल पतिव्रता पत्नी, सात आज्ञाकारी पुत्र, सात सुशील पुत्र-वधुएं और सात ही पुत्रियों का भरापूरा परिवार है। प्रचुर गोधन के कारण परिवार में धनधान्य की बहुतायत है। परिवार संयुक्त है। परिवार के लोग सदाचारी हैं। परस्पर स्नेह समाचरण है, सौमनस्यता है। अतः संतुष्टि है। सुख-समृद्धि की यह संतुष्टि धनिय गोप की हर्ष भरी वाणी में स्पष्ट प्रकट होती है।

परन्तु लोकीय समृद्धि के साथ-साथ यह आध्यात्मिक नवजागरण का भी युग है। भगवान गौतम बुद्ध के आविर्भाव ने आध्यात्मिक वातावरण में गहन गंभीरता भर दी है। उनकी और उनके द्वारा सिखाई गई मुक्तिदायिनी विपश्यना साधना की धर्मकीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी है।

प्रस्तुत प्रसंग में धनिय गोप अपने परिवार और गोधन के साथ मही नदी के तट पर बसा हुआ है। तट और तट के समीपवर्ती हरे-भरे चारागाह गोधन के चरने के लिए बहुत अनुकूल है।

संध्या का समय है। अंशुमाली विश्राम के लिए पश्चिमी क्षितिज की ओर डग बढ़ा रहा है। आकाशमें बादल छाने लगे हैं, घटाएं घुटने लगी हैं। बीच-बीच में बिजली चमक उठती है। गड़गडाहट भरा घन-निनाद सारे वातावरण को आंदोलित कर देता है।

धनिय गोप अपनी कुटिया के सामने बैठा है। सांसारिक समृद्धि और पारिवारिक संवृद्धि से संतुष्ट-प्रसन्न है। उसके सौभाग्य से उसी समय भगवान बुद्ध भी मही के उस सुहावने तट पर आए हैं। धनिय गोप उल्लासभरे शब्दों में अपने सुखी गृहस्थ जीवन के गीत गाता है। प्रत्युत्तर में भगवान अनुत्तर विमुक्ति-सुख का उद्घोष करते हैं। लोकीय सुख तो आखिर लोकीय सुख ही है। अनित्य, नश्वर, भंगुर, देर-सवेर बदल जानेवाला, विनष्ट हो जानेवाला और परिणाम स्वरूप दुःख ही उत्पन्न करनेवाला होता है। नित्य, शाश्वत, ध्रुव, अनुत्तर विमुक्ति-सुख से उसकी कोई तुलना नहीं।

दोनों की वार्ता अत्यंत रोचक ही नहीं, बल्कि प्रेरणा प्रदायक है। धर्मसंवेग जगानेवाली है। आओ, सुनें:-

धनिय गोप - "भात मेरा पक चुका है। दूध दुह लिया गया है। संयुक्त परिवार के साथ सामंजस्यपूर्ण वातावरण में मही नदी के तट पर निवास करता हूं। कुटी छायी हुई है। आग सुलगा ली गयी है। अब हे पर्जन्यदेव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(गृहस्थ जब सारे कामोंसे निवृत्त होकर विश्राम करता है तो वर्षा भले बरसे, उसे बाधक नहीं लगती)

भगवान बुद्ध - "मैं क्रोध और कठोरता से सर्वथा निवृत्त हूं। मही नदी के तीर पर एक रात के लिए ठहरा हूं। मेरी कुटी बिना छत की है। मेरी आग बुझ चुकी है। अब हे देव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(जीवनमुक्त व्यक्ति के लिए कोई बाधा रह ही नहीं जाती। यह भौतिक शरीर एक कुटिया है जो राग, द्वेष और मोह से आच्छादित रहती है और जिसमें मर्कट स्वभावी मन निवास करता है। विपश्यना साधना द्वारा विकारोंपर पड़ा यह आच्छादन खुल जाता है, मानो कुटिया की छत खुल जाती है तो मन का मरकट पना समाप्त हो जाता है। वह शांत हो जाता है। इसे ही विवट-कपाट या विवट-कुटी कहते हैं। ऐसे निर्वाणदर्शी व्यक्ति के भीतर विकारों की अग्नि पूरी तरह बुझ जाती है। उसका भव-भ्रमण छूट जाता है। उसका यह अंतिम जीवन होता है। इसीलिए मही तट पर केवल एक रात टिकने की बात कही।)

धनिय गोप - "यहां न मक्खी है, न मच्छर। गौवें तटवर्ती कछार पर उगी घास चरती हैं। वर्षा भले बरसे, वे उसे सह लेंगी। इसलिए हे देव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(मक्खी मच्छर का न होना उन दिनों के ग्राम्य-जीवन की स्वच्छता पर प्रकाश डालता है।)

भगवान बुद्ध - "मैंने एक नाव बनाई और भवसागर के पार चला आया। अब तो इस नाव की भी आवश्यकता नहीं रह गयी। इसलिए हे देव! अब चाहो तो जी भर बरसो।"

(भवपार पहुँचे हुए व्यक्ति को कोई भवबाधा नहीं। अब संसार की आंधी, वर्षा उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।)

धनिय गोप - "मेरी गोपी आज्ञाकारिणी है, अलोलुप है, अव्यभिचारिणी है। दीर्घकाल से वह मेरे साथ प्रेमपूर्वक रहती है। उसके बारे में मैंने कभी कोई पाप की बात नहीं सुनी। अब हे देव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(एक गृहस्थ के लिए पतिव्रता जीवन-संगिनी चिंतामुक्त सुख का कारण होती है।)

भगवान बुद्ध - "मेरा मन आज्ञाकारी है, विमुक्त है। दीर्घ काल से मैंने इसे सुशिक्षित कर रखा है, सुदन्त बना रखा है। मुझमें जरा भी पाप नहीं बचा है। इसलिए हे देव! अब चाहो तो जी भर बरसो।"

(ऐसे विमुक्तचित की सारी दुश्चिंताएं स्वतः समाप्त हो जाती हैं। जो निष्पाप है, उसके लिए कोई भवबाधा नहीं।)

धनिय गोप - "मैं स्वयं अपना मालिक हूं। वेतनभोगी मजदूर नहीं। मेरे सभी पुत्र भी आज्ञाकारी हैं। मेरे समान स्वस्थ संयमी हैं। उनके बारे में भी कभी कोई पाप की बात नहीं सुनी। इसलिए हे देव! अब चाहो तो जी भर बरसो।"

भगवान बुद्ध - "मैं किसी का चाकर नहीं। निवृत्त होकर सारे संसार में चाहे जहां विचरण करता हूं। मुझे चाकरी की आवश्यकता नहीं। इसलिए हे देव! अब चाहो तो जी भर बरसो।"

(जो अपने मन का गुलाम नहीं , स्वयं अपना मालिक है, वह सही माने में स्वाधीन है। अतः चिंतामुक्त है।)

धनिय गोप - "मेरे यह तरुण बैल हैं, गर्भधारिणी गौवें हैं, बछिया है। इन गौवों का पति गवंपति वृषभ भी है। इसलिए हे देव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(धनधान्य से परिपूर्ण हो, स्वस्थ हो, पतिव्रता पत्नी हो और आज्ञाकारी पुत्र हो तो गृहस्थ अपने आपको बड़ा सुखी, सुरक्षित महसूस करता है।)

भगवान बुद्ध - "मेरे पास न बैल है, न बछड़े, न गर्भधारिणी गौवें हैं, न बछिया और न ही गवंपति वृषभ। इसलिए हे देव! चाहो तो जी भर बरसो।"

(अपरिग्रही अनासक्त से बढ़कर सुखी, सुरक्षित और कौन होगा भला?)

धनिय गोप - "मेरे खूंटे बड़ी दृढ़ता से गड़े हैं। भली प्रकार बटी हुई मूंज की नई मजबूत रस्सियां हैं। बलवान बैल भी इन्हें नहीं तोड़ सकते। इसलिए हे देव, चाहे तो जी भर बरसो।"

(संसारी व्यक्ति समझता है कि यह धन-धान्य, वैभव-संपदा, पुत्र-कलत्र मेरे हैं; मैंने इन्हें बांध रखा है। अपने वश में कर रखा है। ये सदा मेरे अधिकार में रहेंगे। इसलिए मैं भविष्य के लिए सदा पूर्ण सुरक्षित हूं। बेचारा भोला मानव नहीं जानता कि जिन्हें मैंने बांध रखा है, उन्होंने ही मुझे बांध रखा है। जिस परिवार और संपदा को मैं स्थायी, सुरक्षित समझता हूं, जिसके आधार पर मैं अपने आप को स्थायी, सुरक्षित समझता हूं; मेरे साथ-साथ वह सब कितने अस्थायी हैं, कितने असुरक्षित हैं। इसी जीवन में विवश देखते-देखते समाप्त हो जाते हैं और यह दुःखगर्भा अस्थायी सुख जन्म-जन्मांतरों तक चलते रहता है। कैसा विभ्रम है? कैसा विपर्यास है?)

और इसके मुकाबले,

भगवान बुद्ध - "जैसे बलवान वृषभ सारे बंधन तोड़ देता है, जैसे बलवान हाथी सारी लताओं को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही मैंने भी अपने सारे बंधन पूर्णतया तोड़ दिए हैं। मैं भवबन्धन से मुक्त हो चुका हूं। अब मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं है, पुनः गर्भशयन नहीं है। हे देव! इसलिए चाहो तो जी भर बरसो।"

पूर्ण विमुक्ति के इस मंगल घोष ने सारे वातावरण को धर्म की तरंगों से तरंगित कर दिया। जहां एक ओर समीप की ऊंची-निची धरती को जलराशि से भरता हुआ पर्जन्य मेघ बरसा, वहां साथ-साथ सारी प्रकृति को सद्धर्म के अमृतजल से सींचता हुआ भगवान की वाणी का धर्ममेघ बरसा। धनिय गोप भाग्यशाली था। अनेक जन्मों की संग्रहीत पुण्य पारमिताओं का धनी था। धर्मवाणी का यह मंगलघोष सुनते ही उसका तन-मन पुलकरोमांच से भर उठा। अनित्यबोधिनी तरंगों से लहराती हुई धर्मगंगा सारे शरीर में प्रवाहमान हो उठी। क्षण भर के लिए इंद्रियातीत नित्य, ध्रुव, निरोध अवस्था का साक्षात्कार हुआ। धनिय धन्य हुआ। स्रोतापन्न बना। उसके साथ परिवार के कुछ अन्य सदस्य भी स्रोतापन्न बने।

अभी तक तो केवल नाम ही सुना था। अब देखा और जाना कि यह तो स्वयं भगवान बुद्ध पधारे हैं। मैं भी कैसा पागल था, इनसे जबान लड़ा रहा था। पर चलो अच्छा ही हुआ। इस बहाने इनका दर्शन हुआ। सही दर्शन हुआ। भौतिक काया का ही दर्शन नहीं, धर्मकाया का भी दर्शन हुआ। स्वानुभूति के स्तर पर धर्म का दर्शन हुआ। यही तो भगवान का सही दर्शन है। मैं निहाल हो गया।

महामेघ की वर्षा-ध्वनी के बीच धनिय गोप भावविभोर, नतमस्तक होकर निवेदन करता है।

लाभा वत नो अनप्पका।

- सचमुच हमारा अनल्प लाभ हुआ है।

हमने भगवान के सही दर्शन किए हैं। हे चक्षुष्मान! हम आपकी शरण ग्रहण करते हैं। हे महामुनि! आप हमारे शास्ता हैं, गुरु हैं। यह गोपी और मैं अब आपकी शिक्षा के अनुकूल विशुद्ध ब्रह्मचर्य का जीवन जीते हुए धर्म का आचरण करेंगे और इस पथ पर आगे बढ़ते हुए जन्म-मृत्यु को पार करते हुए भवदुःखों का नितांत अंत कर लेंगे।

***

धनिय गोप को अपने भवक्षेत्र के बाहर जाते हुए देखकर देवपुत्र मार ने कहा, "पुत्रवान पुत्रों से आनंदित होता है, गोधनी गौवों से। विषयभोग ही मनुष्य के आनंद का कारण होता है। जिनके पास विषय-भोग के साधन नहीं हैं, उनके पास आनंद कहां?"

इसके प्रत्युत्तर में भगवान की गुरुगंभीर धर्मवाणी गूंजी -"पुत्रवान पुत्रों के कारण चिंतामग्न रहता है और गोधनी गौवों के कारण। विषयासक्ति के कारण मनुष्य चिंताग्रस्त रहता है। जो विषयासक्ति से विमुक्त है, वही चिंता-विमुक्त है।"

आओ, साधकों, भगवान की यह धर्ममयी वाणी हमारे लिए भी प्रभूत प्रेरणा का कारण बने! हम भी धनिय गोप की तरह कदम-कदम आगे बढ़ते हुए विषयासक्ति से छुटकारा पाएं और दुःखविमुक्त होकर अपना कल्याण साध लें।

कल्याण मित्र,

स.ना.गो.